श्रृंखला – दो

मृतात्माओं की खोज...

(मृत्यु के बाद का जीवन)

'मृतात्माओं की खोज...' – एक बृह्द अन्तहीन स्तम्भ के अन्तर्गत, 'मृत्यु के बाद का जीवन' के प्रथम श्रृखंला में वर्तमान को लेकर 'कर्म और पुनर्जन्म' के सापेक्ष में एक आवश्यक संक्षिप्त चर्चा/व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। उनमें 'धार्मिक/आध्यात्मिक' उन विज्ञ विद्वानों और लेखकों/विचारकों के विविध मतों और शोखपरक् सोचों का भी उल्लेख किया गया है जिन्होंने इस अतिविवादित क्षेत्र में शोधपरक् कार्य करने का दुस्साहस किया है।

'दुस्साहस' – शब्द का प्रयोग यहां पर इसलिए किया जा रहा है कि – 'वर्तमान में 'धर्म/अध्यात्म' को लेकर एक आध्यात्मिक शोधकर्ता मानव सापेक्ष में जो भी शोधपरक् कार्य करता है उसमें सामान्यतः प्रशंसा कम और विवादों की स्थिति की सम्भावना ज्यादा रहती है । लेकिन शोधकर्ता विवादों के झंझावातों के बीच से बाहर निकलकर समाज से किसी न किसी रूप में जुड़ने लगता है और तथाकथित विवादों का घेरा 'जहां का तहां' पड़ा रह जाता है।

इसी उपरोक्त क्रम में 'मृतात्माओं की खोज...' के अन्तर्गत हमें 'मृत्यु के बाद का जीवन ' की क्रमिक श्रृंखला का आरम्भ प्रथम स्रष्टि से करना होगा। 'स्रष्टि और विनाश' के क्रम में अब तक तेरह बार सम्पूर्ण स्रष्टि का विनाश (प्रलय/महाप्रलय) हो चुका है। इस क्रम में हमारी सम्पूर्ण मानवता चौदहवीं स्रष्टि के उत्तरार्द्ध पक्ष पर अपने – अपने ढंग – क्रम से गतिशील है और उसी क्रम में स्रष्टि के अगतिशील अवयव भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। 'सूक्ष्म और स्थूल' के संयोजन और विखंडन का क्रमिक क्रम हर स्रष्टि में गतिशील रहा है। यदि ऐसा न होता तो किसी भी स्रष्टि के सम्पूर्ण विनाश के बाद नई स्रष्टि का आरम्भ न होता । क्योंकि नई स्रष्टि के लिए 'अन्त ही आरम्भ' है।

'मृतात्माओं की खोज...' के अन्तर्गत, 'मृत्यु के बाद का जीवन ' – विषय पर खोज/शोध करने से पूर्व प्रथम स्रष्टि से सम्बन्धित आवश्यक विवेचना

यहां प्रस्तुत करना आवश्यक है। प्रथम स्रष्टि के आरम्भ को संक्षेप में निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. प्रकृति की उत्पत्ति के पूर्व पूरा का पूरा ब्रह्माण्ड एक अनन्तगामी और बहुआयामी शून्य रहा होगा।

2. प्रकृति की संरचना के पूर्वक्रम में जो पांच तत्वों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि) की बात की गयी है उसमें आरम्भिक क्रम में कौन सा तत्व रहा होगा।

3. यह सच है कि पांचों तत्वों में 'पृथिवी' शून्यपरक् ब्रह्माण्ड का तत्व रहा होगा। लेकिन प्रामाणिक आधार पर इसे आरम्भिक तत्व नहीं माना जा सकता है।

4. इस बात को भी एक सिरे से नहीं नकारा जा सकता है कि आकाशीय तत्व की संरचना के बाद ही जलवृष्टि हुई होगी, जिससे पृथिवी तत्व की संरचना होने की सम्भावना हो सकती है।

5. आध्यात्मिक असीमित परिवेश में 'दार्शनिक और तार्किक विवेचना' के आधार पर 'वायु और आकाश' को भी स्रटि के सापेक्ष में आरम्भिक तत्व नहीं माना जा सकता है। क्योंकि 'वायु और आकाश' तत्व की उत्पत्ति तभी हो सकती है जब कोई तेजोमय तत्व की संरचना इस प्रकार हो जो अतिव्यापक अनन्तगामी शून्य के तमाम असंख्य अवयवों को हिलाडुलाकर वायुतत्व की उत्पत्ति और आकाश तत्व की जीवंतता को अतिविशाल बना और सिद्ध कर सके।

6 अन्ततः एक तत्व बचता है जिसे हम 'अग्नितत्व' कह सकते हैं । सम्भवतः हो सकता है कि प्रथम प्रकृति स्रष्टि का यह आरम्भिक तत्व रहा हो । क्योंकि यह 'अग्नितत्व' ही ऐसा तत्व है जो किसी भी ऊर्जामय पदार्थ के स्वाभाविक उथ – पुथल से स्वतः प्रस्फुटित हो सकता है।

उपरोक्त बिन्दुओं पर व्यापक तार्किक और दार्शनिक दृष्टि डालने पर यह सच्चाई स्वतः प्रस्फुटित हो जाती है कि निश्चित रूप से प्रकृति की संरचना का आरम्भिक तत्व 'अग्नि तत्व' रहा होगा।

इस तारतम्य में अब यह कहना और सोचना सार्थक होगा कि – 'अग्नितत्व' की उत्पत्ति के उपरान्त 'वायुतत्व' और 'आकाश तत्व ' की उत्पत्ति हुई होगी। उसी क्रम में 'आकाश तत्व' और 'वायु तत्व' के संयोजन और आपसी

सहयोग से 'जल तत्व' की उत्पत्ति हुई होगी । 'जल तत्व' द्वारा व्यापक जलवृष्टि के उपरान्त 'पृथिवी तत्व' की उत्पत्ति को सार्वभौमिक क्रम में सत्यपरक् मानना सार्थक लगता है।

पांचों तत्वों की उत्पत्ति के क्रम में 'ब्रह्माण्ड' में असंख्य अवयवों की भी उत्पत्ति हुई होगी – इस तथ्यात्मक बात का भी प्रतिकार नहीं किया जा सकता।

हो सकता है कि 'ब्रह्माण्ड' के व्यापक शून्य के अन्तर्गत यह जो प्रकृति की उत्पत्ति हुई होगी, उसी क्रम में तमाम अनगिनत ऐसे जीव – जन्तुओं की भी उत्पत्ति हुई होगी जो धीरे – धीरे क्रमिक विकास के क्रम में 'मानव जीवन' का कोई न कोई आकार ग्रहण कर लिया हो।

उपरोक्त क्रम में 'प्रकृति की उत्पत्ति' की व्यापक सम्भावना के अन्तर्गत, उसके विविध आयामों और उससे सम्भावित उत्पत्ति को लेकर भी शोधात्मक विवेवचना कर लेना आवश्यक है। क्योंकि उसी श्रृंखला में 'जन्म, मृत्यु और जन्म' का क्रम भी अर्द्धवृत्त से पूर्णवृत्त की ओर निरंतर घूमेंगा। इस शोधात्मक और रहस्यात्मक बिन्दुओं को निम्नक्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1.जब कोई चिकित्सक किसी व्यक्ति की शल्य चिकित्सा करता है तो उसे भी अन्त तक यह आन्तरिक संशय बना रहता है कि – अमुक व्यक्ति जिसकी वह शल्य चिकित्सा कर रहा है, वह चिकित्सा के उपरान्त ठीक होगा या मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।

2. जब हम किसी व्यापक या सूक्ष्म वस्तु या रचनात्मक बिन्दु की बात करते हैं तो वह 'शल्य चिकित्सा' का स्वरूप किसी न किसी रूप में ग्रहण कर लेता है।

3. किसी भी निर्माण या संरचना को विविध आयामों के अन्तर्गत कोई नया रूप देना होता है तो उसके लिए एक संतुलित दार्शनिकता के क्रम में 'भावना'या विविध विरोधाभासों को तुष्टिकरण के साथ देखना या सोचना आवश्यक नहीं है।

4. हम इस बात का प्रतिकार नहीं करते हैं कि प्रकृति की उत्पत्ति की व्यापक प्रक्रिया के अन्तर्गत – ईश्वरीय तत्व के व्यापक समूहों की उपस्थिति अल्प या शून्य रही हो।

5. यह ऋत्संम्मत है कि – प्रकृत्ति के उत्पत्ति के अन्तर्गत अखण्ड ब्रह्माण्ड के व्यापक शून्य में किसी न किसी रूप में 'मानव का व्यापक ंअंश ' और 'ईश्वरीय

तत्वांश का अति व्यापक समूह' के मध्य कोई न कोई सामंजस्य अवश्य विद्यमान रहा होगा।

6. प्रकृति की उत्पत्ति के अन्तर्गत यह रहस्य अभी भी बना हुआ है कि 'ईश्वरीय तत्वांश' और 'मानव का तात्विक अंश' की उत्पत्ति किस क्रम में हुई होगी।

7. एक सम्भावित सीमा तक यह सच है कि – देवांश तत्वों के अति व्यापक समूह के लिए कुछ भी करना असंभव नहीं है। एक तरह से स्रष्टि का नियामक /सूत्रधार देवांश तत्वों का व्यापक समूह ही बनता है। ऐसे में आरम्भिक मानव उत्पत्ति विविध जीव – जन्तुओं के विकास/संवर्द्धन/सहयोग से हुआ हो या पुरुष/स्त्री का आरम्भिक स्रोत देवांश तत्वों का समूह स्वयं बना हो – यह सब व्यापक प्रामाणिकता के अभाव में भी एक सीमा तक सम्भव है।

'प्रकति स्रष्टि' के पूर्व हमें 'पंचतत्व' के उद्भव और विकास पर भी नये सिरे से विचार कर लेना चाहिए। 'पंचतत्व' का उद्भव और विकास को निम्न क्रम में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा सकता है–

1. प्रकृति के उत्पत्ति के क्रम में पांचों तत्वों का क्रमिक क्रम – 'अग्नि तत्व, वायु तत्व, आकाश तत्व, जल तत्व और पृथिवी तत्व' हो सकता है। इस उत्पत्ति के क्रम में तत्वों का एक दूसरे से क्रमिक संयोजन या सामंजस्य के मध्य 'ईश्वरीय अंश' की उपस्थिति अवश्य रही होगी। क्योंकि 'ईश्वरीय अंश' की अनुपस्थिति में एक तत्व का दूसरे तत्व से संयोजन या विखंडन असम्भव सा हो जाता है।

2.. यदि ईश्वरीय अंश 'तत्व – दर – तत्व' के अन्तराल में विद्यमान न होता तो मानव या 'जीव – जन्तुओं' के उत्पत्ति की सम्भावना न के बराबर होती । क्योकि प्रकृति के स्रष्टि के सापेक्ष में ईश्वरीय अंश वह सार्थक बीज है जो नई जीवंत स्रष्टि का संवाहक या उत्प्रेरक हो सकता है । – रचनात्मक विज्ञजनों के लिए यह सब नये सिरे से विचारणीय है।

3. स्रष्टि या उत्पत्ति के सापेक्ष में तत्वों का मूल्यांकन यहां पर वैज्ञानिक अर्थों के आधार पर नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह 'तत्व' एक असीमित / अपारिभाषित 'समुच्चय' के अर्थों में प्रयुक्त हो सकते हैं।

4. तत्वो का संयोजन या सामंजस्य, एक दूसरे से क्रमिक श्रृंखला या ऊपर – नीचे के आधार पर नहीं होता है। क्योंकि यह सब ईश्वरीय अंशों के अतिप्रभाव के आधार पर होता है।

5. सच तो है कि स्रष्टि के सापेक्ष तत्वों का क्रमिक क्रम एक दूसरे में विलीन होने प्रयास करता है। वह भी ईश्वरीय अंशों के संतुलित या स्वनिर्मित आधार या व्यापक प्राकृतिक उपक्रम के अन्तर्गत। – यह सब अभी खोज – शोध का विषय बना हुआ है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर हम किसी भी बिन्दु की उपेक्षा या नगण्यता सिद्ध करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। हां, वह कब और कहां दृष्टव्य होगा, इसकी विवेचना हम आवश्यक और निश्चित स्थल पर अवश्य करेंगे।

'तत्व' यहां पर सांकेतिक भाषा है, जो आगामिक क्रम में वैज्ञानिकता को लेकर एक भ्रम उत्पन्न कर सकता है। ऐसे में तमाम भ्रमों से बचने और स्रष्टि की असीमित व्यापकता को सूक्ष्म और विराट दृष्टि से जानने समझने के लिए 'पंचतत्व' को 'पंच महासमुच्चय' के रूप लिया जा सकता है। इसकी क्रमिक विवेचना को निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. अग्नि महासमुच्चय – पूरी स्रष्टि में जब भी हम किसी खण्ड या उपखण्ड को विभक्त करेंगे तो वहां अग्नि महा समुच्चय का पांचवां भाग किसी न किसी रूप में अवश्य मिलेगा। खण्ड – खण्ड में विभक्त समुच्चयों के विविध अवयवों को ढूंढ़ना – खोजना 'ज्ञान – विज्ञान' का विषय है। अब वह इन असंख्य अवयवों में से किन – किन अवयव को ढूंढ – खोज पाता है – यह सब भविष्य के गर्भ की बात है।

2. वायु महासमुच्चय – स्रष्टि के निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान – 1/5 भाग किसी न किसी रूप में अवश्य रहा है। यह पांचवां भाग अन्य चारों समुच्चयों में इस तरह से विलीन रहता है कि उसे किसी भी स्थिति में पूरी तरह अलग करना ईश्वरीय अंशों या उसकी व्यापकता के लिए भी पूर्णतः सम्भव नहीं है।

3. प्रकाश महासमुच्चय – स्रष्टि निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान – 1/5 रहा है। यह 'महासमुच्चय' भी प्रकृति की स्रष्टि में अन्य 'महासमुच्चयों में पूर्णतः विलीन रहते है।

4. आकाश महासमुच्चय – स्रष्टि निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान – 1/5 रहा है। यह 'महासमुच्चय' भी प्रकृति की स्रष्टि में अन्य 'महासमुच्चयों में पूर्णतः विलीन रहते है।

5. पृथिवी महासमुच्चय – स्रष्टि निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान – 1/5 रहा है। यह 'महासमुच्चय' भी प्रकृति की स्रष्टि में अन्य 'महासमुच्चयों में पूर्णतः विलीन रहते है। प्रकृति के स्रष्टि के सापेक्ष में यह 'महासमुच्चय' किसी न किसी रूप में स्रष्टि का मूलाधार बनता है।

पृथिवी, एक ऐसा 'महासमुच्चय' है जो विविध मानव स्रष्टि, जीव – जन्तुओं की स्रष्टि के साथ – साथ विविध जीव – निर्जीव व्यापक अवयवों का नियामक और मूल स्रोत बनता है। वैसे तो स्रष्टि के व्यापक जन समूह को पांचों 'महासमुच्चय' किसी न किसी रूप में नियंत्रित करते रहते हैं।

इसके साथ – साथ 'जीव – जन्तु' और विभिन्न वनस्पतियों के निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान प्रथम स्तर पर रहा है। इसीलिए सम्पूर्ण प्रथम या अन्य स्रष्टि में इसे किसी न किसी रूप में भौतिकता, धार्मिकता और आध्यात्मिकता के आधार पर आरम्भिक स्रोत भी मान सकते हैं।

'मेटाफिजिकल' क्रम में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि – 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में दोनों क्रम क्रमिक रूप में घटित होता है। यही प्रकृति का शाश्वत सत्य है। हां, यह बात अवश्य है कि – किसी एक का क्रम इतना विकसित होता है कि उसके सापेक्ष में दूसरे क्रम को खोज पाना सरल नहीं है।

स्रष्टि की इस व्यापकता और अन्तहीन सा दीखने वाले अति व्यापक कैनवास में वह अन्तहीन सा अन्तराल कितना व्यापक होगा जहां इसका (स्रष्टि) क्रमिक समापन (महाप्रलय) होना आरम्भ हो जायेगा।

स्रष्टि और सामूहिक विनाश (महाप्रलय) के मध्य लगभग 12000 दैव वर्षों का अन्तराल होता है। इस लम्बे अन्तराल में 'पंचतत्व' स्रष्टि के एक – एक कण में विद्यमान ही नहीं, बल्कि विलीन से हो जाते हैं। इस अनन्तगामी सामूहिक विलीनता में इन तत्वों का अलग से कोई ऐसा अवशेष नहीं बचता है जिसे स्रष्टि विनाश के उपरान्त ढूंढ़ा – खोजा जा सके ।

हां, इतना अवश्य है कि प्रकृति के प्रथम स्रष्टि की तरह इन तत्वों के आरम्भिक स्रोत को ढूंढ़ने – खोजने की अलग से आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसलिए यह प्रामाणिक आधार पर नहीं कहा जा सकता है कि इन पंचतत्वों का अस्तित्व 'महाप्रलय' के उपरान्त एकदम से समाप्त सा हो जायेगा। लेकिन इसके

साथ – साथ इस बात का भी प्रतिकार नहीं किया जा सकता है कि 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में 'पंचतत्व' के अस्तित्व का स्वरूप बोधगम्य या दृष्टव्य होगा या नहीं।

प्रामाणिक आधार वहां ढूंढ़ा – खोजा जाता है जहां उसका कोई पूर्व आधार हो। यहां पर भी लगभग इसी मत को विविध परिकल्पना के आधार पर सत्यापित किया जा सकता है।

पूर्व ग्रंथों के अनुसार – मानव मास पितरों का अहोरात्र (दिन और रात्रि) है। इसी क्रम में मानव वर्ष देव अहोरात्र होता है।

कृतयुग का विस्तार दैव मान से 4000 वर्ष है। इसके पूर्व सन्ध्या – 400 वर्ष है और उसके उपरान्त मध्यान्त का काल लगभग 400 वर्ष है। इसी क्रम में त्रेता, द्वापर और कलियुग क्रमिक क्रम में – 3000, 2000 और 1000 दैव वर्ष है। इस क्रम में कृतयुग – 4800 वर्ष, त्रेता – 3600 वर्ष, द्वापर – 2400 वर्ष और कलियुग – 1200 दैव वर्ष का होगा। इन चारों युगों के सामूहिक अन्तराल का विस्तार लगभग – 12,000 दैव वर्ष होगा।

यही लगभग 12,000 दैव वर्ष का अन्तराल 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में होना चाहिए।

यह सम्भावित सच है कि प्रथम स्रष्टि के उपरान्त जो 'महाप्रलय' हुआ होगा उसमें असंख्य 'जीव – जन्तु', असंख्य वनस्पतियों के साथ – साथ असंख्य मानव आदि का असंख्य/असंख्य सूक्ष्म भी प्रथम स्रष्टि की तरह यह दूसरी स्रष्टि में शत प्रतिशत विशुद्ध नहीं रहा होगा। लेकिन इसी क्रम में इस बात का भी प्रतिकार नहीं किया जा सकता है कि यह दूसरी स्रष्टि प्रथम स्रष्टि की तरह एकदम से रिक्त – सिक्त नहीं रही होगी।

असंख्य – असंख्य जीव आत्माएं विनाश – स्रष्टि के क्रम में ब्रह्माण्ड में ईश्वरीय अवशेषों के सापेक्ष में धरोहर के रूप में विद्यमान रही होगी। 'पंचतत्व' के साथ – साथ उन सबका नई स्रष्टि के निर्माण में किसी न किसी रूप में सहयोग अवश्य रहा होगा।

इस नई स्रष्टि के सृजनात्मक क्रम में असंख्य – असंख्य जीव आत्माओं की वायावी गतिशीलता से रचनात्मकता के साथ – साथ विध्वंसात्मक गतिशीलता से कहीं न कहीं स्रष्टि के पुनः विनाश के भी सोते को फूटने की

न्यूनात्मक शुरूआत हो गयी होगी। क्योंकि स्रष्टि के सापेक्ष में 'अन्त ही आरम्भ' है।

रचना और विध्वंस का क्रम स्रष्टि में नदी के दो पाट की तरह निरंतर गतिशील रहता है। अब यह बात दूसरी है कि दोनों के मध्य का अन्तराल कब और किन परिस्थियों में कितना घटता – बढ़ता है। – यह सब नये सिरे से विचारणीय है।

'स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत' – आदि सात मनुओं का स्रष्टि आरम्भ और निर्माण में विशेष योगदान रहा है। 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में यह वैवस्वत मनु के 14वीं स्रष्टि का कलियुग है।

'स्रष्टि – विनाश' के मध्य के अन्तराल का मध्य नियामक बिन्दु कभी – कभी इस बात का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है कि – उस बिन्दु के पूर्व और उत्तर में धार्मिक और आध्यात्मिक गतिविधियों की व्यवस्था कैसी और किस प्रकार की रही है। धार्मिकता के अन्तर्गत, यदि कर्मकाण्डीय व्यवस्था स्वस्थ्य और रचनात्मक रहती है तो मानव जीवन के 'सूक्ष्म – स्थूल' के संयोजन और विखंडन का क्रम 'जन्म – मृत्यु और जन्म' पुनर्जन्म से निरंतर जुड़ता रहता है। यदि इस क्रमिक तारतम्य में जीवात्मा का आवागमन निर्द्वन्द्व और सामान्य रहता है तो चारो महायुगों का प्रस्तावित समय या अन्तराल विशेष प्रभावित नहीं होता है।

यह भी यथार्थतः सच है कि जिस काल – परिवेश में ऋषि – मुनियों के धर्मसूत्रों और गृहसूत्रों का पूर्णतः पालन जनमानस द्वारा राजधर्म के अन्तर्गत किया गया है वहां भी चारों युगों के उपरान्त विनाश हुआ है लेकिन उसके उपरान्त स्रष्टि का स्वरूप पहले से स्वस्थ्य और सशक्त परंपराओं के अन्तर्गत हुआ है।

अन्ततः हम इस बात को भी स्पष्ट कर देते है कि धार्मिकता और आध्यात्मिकता के स्वस्थ्य – सशक्त और तथाकथित विकसित परिवेश में ईश्वरीय अवशेषों, अंशों और उनसे जुड़ी आध्यात्मिक ऊर्जा का यथोचित विकास भी हुआ है। यदि ऐसा न होता तो हम आप असंख्य – असंख्य मानव, जीव – जन्तुओं और असंख्य वनस्पतियों के साथ चौदहवीं स्रष्टि के कलियुग तक न पहुच पाते।

इतना तो ऋत् साक्ष्यों के आधार पर सच है कि – आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ – साथ विविध ऊर्जा का स्रोतात्मक स्रोत या सोता कभी विनष्ट नहीं होता है। वह सबका सब 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में अपना रूप / स्वरूप बदलते हुए स्रष्टि / विनाश के विविध रूप / अनन्तगामी आयामों में निरंतर विद्यमान रहता है।

हां, इतना अवश्य है कि विविध ऊर्जाओं में कालखण्ड के परिवर्तन के क्रम में कभी – कभी आपेक्षित परिवर्तन स्वतः हो जाता है। ऐसे में हम प्रकृति के तथाकथित आपेक्षित परिवर्तन को नकार भी तो नहीं सकते।

लेकिन उपरोक्त क्रम में प्रकृति के सापेक्ष में जो भी परिवर्तन होता है उसमें किसी भी तरह से धर्मिक / आध्यात्मिक ऊर्जा या उससे जुड़े विविध ऊर्जा का ह्रास नहीं होता है। हां, उनके परिवर्तनशील अन्तराल में थोड़ा – बहुत परिवर्तन प्रकृति के सापेक्ष में हो जाये – यह अलग बात है। – यह सब भी विविध आध्यात्मिक विज्ञजनो के लिए शोधात्मक दृष्टि से अतिविचारणीय है।

आरम्भिक काल से ही यह होता रहा है कि – हम अपनी खुली आंखों जितनी दूर तक देखने में सक्षम होते है, कानों से तीव्र ध्वनियों को एक सीमा तक सुनने में सक्षम होते हैं, नाक से दुर्गन्ध / सुगंन्ध को एक सीमा तक ग्रहण कर सकते हैं या हाथ – पैर या शरीर के अन्य अंगों का उपयोग / प्रयोग एक सीमा तक कर सकते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि उसके आगे पीछे और कुछ नहीं है। सच तो यह है कि हमारे भूत और भविष्य में किसी न किसी अदृश्य क्रम में कोई न कोई जीवन सूक्ष्म रूप में लुका – छिपा है। उन सब अदृश्य से लगने वाले क्रमों की चर्चा 'मृतात्माओं की खोज' में विस्तार से की गयी है।

यह असंख्य मृतात्माएं धार्मिक / आध्यात्मिक ऊर्जाओं से जुड़ते – टूटते हुए कब मानव जीवन में प्रवेश करती है और कब मानव जीवन से 'सूक्ष्म – स्थूल' के विखंडन के क्रम में अलग – थलग होकर मृतात्मा का अदृश्य स्वरूप / आकार धारण कर पुनर्जन्म की ओर विविध योनियों में भ्रमण करते पुनः मानव या जीव – जन्तु के जीवन में प्रवेश करके सजीव हो उठती हैं।

उपरोक्त बातों को विविध कथ्य – तथ्य के अन्तर्गत कहने का अर्थ यह है कि प्रकृति के विविध अवयवों के साथ – साथ 'मृतात्माओं के विविध आयाम' का क्रम भी जुड़ा हुआ है।

हां, इतना अवश्य है कि 'महाप्रलय' और नई स्रटि के मध्य इन सबकी गतिशीलता एक काल सीमा तक शून्य सी हो जाती है । इन सबका अर्थ कदापि यह नहीं निकालना चाहिए कि उन सबका अस्तित्व संदिग्ध हो सकता है।

सच तो यह है कि 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में हम सबका जीवन असंख्य – असंख्य जीवात्माओं या मृतात्माओं के साथ – साथ उन तथाकथित प्रकृति के विविध असंख्य – असंख्य अवयवों से जुड़ता – टूटता है जो तथाकथित 'महाप्रलय' के उपरान्त नई स्रष्टि की ओर उन्मुख हैं । यही नहीं, बल्कि यह भी शाश्वत सत्य है कि 'स्रष्टि – दर – स्रष्टि' और 'विनाश – दर – विनाश' के मध्य पूरा का पूरा ब्रह्माण्ड तथाकथित प्रकृति के सापेक्ष कहीं भी किसी से अलग – थलग नहीं होता है। यदि यह सब ऐसा न होता तो यह तथाकथित 'प्रकृति की उत्पत्ति' भी किसी न किसी रूप में प्रभावित होती रहती। यथार्थतः ऐसा सम्भव नहीं है।

'स्रष्टि – विनाश और स्रष्टि' के सापेक्ष में 'पंचतत्व' /'पंचमहासमुच्चय' को लेकर उपरोक्त क्रम में जो शोधात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है उसमें कहीं भी यह परिलक्षित नहीं होता है कि 'पंचतत्व' भी 'स्रष्टि और विनाश' के विविध क्रमों से किसी न किसी रूप में प्रभावित होते हैं। हां, इतना अवश्य है कि इनका उद्‌भव/आरम्भ 'प्रथम स्रष्टि' में क्रमिक क्रम (अग्नि'तेज', वायु, आकाश, जल और पृथिवी) अवश्य हुआ है लेकिन 'प्रथम स्रष्टि' के उपरान्त उनका सम्भावित क्रम (पृथिवी, जल, तेज 'अग्नि', वायु और आकाश) का मूल स्वरूप कभी भी परिवर्तित नहीं हुआ है। यहां तक कि 'स्रष्टि और विनाश' के क्रमिक क्रम में भी 'पंचतत्व' का मूल स्वरूप प्रभावित या परिवर्तित नहीं हुआ है।

'मेटाफिजिकल' क्रम में विविध 'भौतिक/ आध्यात्मिक' ऊर्जाओं की तरह 'पंचतत्व' का मूलस्रोत कभी भी नष्ट नहीं होता है। यहां तक कि प्रकृति के 'स्रष्टि, विनाश और स्रष्टि' के क्रमिक क्रम में इनका (पंचतत्व) मूल स्वरूप' दृश्य/अदृश्य' रूप में 'देवांश के अन्तहीन व्यापक समूह' और 'असंख्य/असंख्य मृतात्माओं ' के 'दृश्य/ अदृश्य' व्यापक समूहों के साथ 'अखण्ड ब्रह्माण्ड' में निरंतर किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। इन सबके लिए यह कहना

रंचमात्र भी तर्कसंगत नहीं है कि – ' हम अपनी खुली आंखों से जितनी दूर तक देख लें, खुले कानों से जितने तीव्रगति से सुन ले या अपने विविध अंगों (हाथ और पैर आदि) का अधिक से अधिक जितना उपयोग/प्रयोग कर लें – वहीं सही है'।

'पंचतत्व' (पृथिवी, जल, तेज 'अग्नि', वायु और आकाश आदि) के अन्तहीन व्यापकता और अन्तहीन अस्तित्व को लेकर शाब्दिक संदर्भों में जितनी भी व्याख्या या तर्कादि प्रस्तुत किया जाय वह सबका सब 'अखण्ड ब्रह्माण्ड' के सापेक्ष में आधा अधूरा ही सिद्ध हो पायेगा। क्योंकि इन्हें शब्दों में बांधना या लिपिबद्ध करना 'देवांश के अतिव्यापक / अन्तहीन' समूहों की तरह असम्भव सा है। लगभग यही स्थिति 'मृतातमाओं के असंख्य/असंख्य' समूहों की भी है।

लेकिन स्रष्टि की वर्तमान (चौदहवीं स्रष्टि का कलियुग) व्यवस्था/अव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इन सबके अन्तहीन अस्तित्व को यथासम्भव लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा सकता है। क्योंकि यह वर्तमान व्यवस्था 'सतयुग, त्रेता और द्वापर आदि' की तरह नहीं है जिसमें इनकी सूक्ष्मता या विराटता को 'अन्तः बाह्य' में अतिविज्ञ जन जान /समक्ष सकें।

'पंचतत्व' के अन्तहीन अस्तित्व और अन्तहीन व्यापकता को लेकर निम्न सम्भावनाओं को प्रस्तुत करने का दुस्साहस निम्न क्रम में किया जा सकता है–

1.'पंचतत्व' का समानुपातिक क्रम ऐसा होता है जिसमें पांचों के पांचों 'तत्व' निरंतर समाहित रहते हैं।

2.प्रथम स्रष्टि के उपरान्त .'पंचतत्व' के समानुपातिक क्रम को 'स्रष्टि और विनाश' का क्रम भी कभी प्रभावित नहीं कर पाया है।

3. प्राकृतिक स्रष्टि में 'पंचतत्व' का अस्तित्व निरंतर बना रहता है।

4. .'पंचतत्व' के समानुपातिक क्रम में जब 'अग्नि' तत्व और 'जल' तत्व के मध्य बराबर का समानुपातिक क्रम बन जाता है तो 'अग्नि' तत्व का आहार 'जल' तत्व बन जाता है और 'जल' तत्व का आहार 'अग्नि' तत्व बन जाता है। यह प्रतिक्रिया मानव और जीव – जन्तुओं की योनियों में सामान्य क्रम में कभी – कभी देखने को मिलती है।

5. अन्तहीन प्रकृति में, जब स्रष्टि अपने अन्तिम चरण यानि विनाश के निकट पहुंचने लगती है तो उस समय पंचतत्वों का समानुपातिक कम आपस में शिथिल पड़ने लगता है। वहीं जब नये स्रष्टि का आरम्भ होने का समय आता है तो पंचतत्वों के मध्य का समानुपातिक कम आपस में प्रगाढ़ होने लगता है।

6. 'पंचतत्व' का समानुपातिक कम जब साम्यावस्था में रहता है तो 'देवांश' तत्वों का अन्तहीन अतिव्यापक समूह और विविध 'जीवांश' (मानव सूक्ष्म और जीव – जन्तुओं का सूक्ष्म) का अन्तहीन सा अतिव्यापक समूह उससे ऐसा तारतम्य और समन्वय निर्मित करता है जो स्रष्टि की व्यापकता और पराकाष्ठा को नियति कम में दर्शाने लगता है।

7. अन्ततः निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि – 'प्रथम स्रष्टि' के आरम्भ के उपरान्त 'पंचतत्व' का समानुपातिक कम 'स्रष्टि–विनाश और स्रष्टि' के कमिक कम में कभी भी विनष्ट नहीं हुआ है। 'स्रष्टि – विनाश और स्रष्टि' के आगामिक कम में भी 'पंचतत्व' का समानुपातिक कम कभी विनष्ट नहीं होगा।

उपरोक्त सप्त बिन्दु को 'ऋत्साक्ष्य' के आधार पर 'काल/महाकाल' से किसी न किसी रूप में जोड़ा जा सकता है। क्योंकि उसके सापेक्ष में 'पंचतत्व' का समानुपातिक कम भी अजर और अमर है। आगे की श्रृंखला में हम ' जीवोत्पत्ति का मूल स्रोत' – विषय पर चर्चा करेंगे। क्योकि 'मृत्यु के बाद का जीवन' का सही शोधात्मक विवरण ' जीवोत्पत्ति का मूल स्रोत' के बिना सही कम में प्रस्तुत करना ज्यादा सार्थक नहीं हो सकता है।

– कमशः

मृतात्माओं की खोज...

(मृत्यु के बाद का जीवन)

'मृतात्माओं की खोज...' – एक बृह्द अन्तहीन स्तम्भ के अन्तर्गत, 'मृत्यु के बाद का जीवन' के प्रथम श्रृखंला में वर्तमान को लेकर 'कर्म और पुनर्जन्म' के सापेक्ष में एक आवश्यक संक्षिप्त चर्चा/व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। उनमें 'धार्मिक/आध्यात्मिक' उन विज्ञ विद्वानों और लेखकों/विचारकों के विविध मतों और शोखपरक् सोचों का भी उल्लेख किया गया है जिन्होंने इस अतिविवादित क्षेत्र में शोधपरक् कार्य करने का दुस्साहस किया है।

'दुस्साहस' – शब्द का प्रयोग यहां पर इसलिए किया जा रहा है कि – 'वर्तमान में 'धर्म/अध्यात्म' को लेकर एक आध्यात्मिक शोधकर्ता मानव सापेक्ष में जो भी शोधपरक् कार्य करता है उसमें सामान्यतः प्रशंसा कम और विवादों की स्थिति की सम्भावना ज्यादा रहती है । लेकिन शोधकर्ता विवादों के झंझावातों के बीच से बाहर निकलकर समाज से किसी न किसी रूप में जुड़ने लगता है और तथाकथित विवादों का घेरा 'जहां का तहां' पड़ा रह जाता है।

इसी उपरोक्त क्रम में 'मृतात्माओं की खोज...' के अन्तर्गत हमें 'मृत्यु के बाद का जीवन ' की क्रमिक श्रृंखला का आरम्भ प्रथम स्राष्टि से करना होगा। 'स्राष्टि और विनाश' के क्रम में अब तक तेरह बार सम्पूर्ण स्राष्टि का विनाश (प्रलय/महाप्रलय) हो चुका है। इस क्रम में हमारी सम्पूर्ण मानवता चौदहवीं स्राष्टि के उत्तरार्द्ध पक्ष पर अपने – अपने ढंग – क्रम से गतिशील है और उसी क्रम में स्राष्टि के अगतिशील अवयव भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। 'सूक्ष्म और स्थूल' के संयोजन और विखंडन का क्रमिक क्रम हर स्राष्टि में गतिशील रहा है। यदि ऐसा न होता तो किसी भी स्राष्टि के सम्पूर्ण विनाश के बाद नई स्राष्टि का आरम्भ न होता । क्योंकि नई स्राष्टि के लिए 'अन्त ही आरम्भ' है।

'मृतात्माओं की खोज...' के अन्तर्गत, 'मृत्यु के बाद का जीवन ' – विषय पर खोज/शोध करने से पूर्व प्रथम स्राष्टि से सम्बन्धित आवश्यक विवेचना यहां प्रस्तुत करना आवश्यक है। प्रथम स्राष्टि के आरम्भ को संक्षेप में निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. प्रकृति की उत्पत्ति के पूर्व पूरा का पूरा ब्रह्माण्ड एक अनन्तगामी और बहुआयामी शून्य रहा होगा।

2. प्रकृति की संरचना के पूर्वक्रम में जो पांच तत्वों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि) की बात की गयी है उसमें आरम्भिक क्रम में कौन सा तत्व रहा होगा।

3. यह सच है कि पांचों तत्वों में 'पृथिवी' शून्यपरक् ब्रह्माण्ड का तत्व रहा होगा। लेकिन प्रामाणिक आधार पर इसे आरम्भिक तत्व नहीं माना जा सकता है।

4. इस बात को भी एक सिरे से नहीं नकारा जा सकता है कि आकाशीय तत्व की संरचना के बाद ही जलवृष्टि हुई होगी, जिससे पृथिवी तत्व की संरचना होने की सम्भावना हो सकती है।

5. आध्यात्मिक असीमित परिवेश में 'दार्शनिक और तार्किक विवेचना' के आधार पर 'वायु और आकाश' को भी स्रटि के सापेक्ष में आरम्भिक तत्व नहीं माना जा सकता है। क्योंकि 'वायु और आकाश' तत्व की उत्पत्ति तभी हो सकती है जब कोई तेजोमय तत्व की संरचना इस प्रकार हो जो अतिव्यापक अनन्तगामी शून्य के तमाम असंख्य अवयवों को हिलाडुलाकर वायुतत्व की उत्पत्ति और आकाश तत्व की जीवंतता को अतिविशाल बना और सिद्ध कर सके।

6 अन्ततः एक तत्व बचता है जिसे हम 'अग्नितत्व' कह सकते हैं । सम्भवतः हो सकता है कि प्रथम प्रकृति स्रष्टि का यह आरम्भिक तत्व रहा हो । क्योंकि यह 'अग्नितत्व' ही ऐसा तत्व है जो किसी भी ऊर्जामय पदार्थ के स्वाभाविक उथ – पुथल से स्वतः प्रस्फुटित हो सकता है।

उपरोक्त बिन्दुओं पर व्यापक तार्किक और दार्शनिक दृष्टि डालने पर यह सच्चाई स्वतः प्रस्फुटित हो जाती है कि निश्चित रूप से प्रकृति की संरचना का आरम्भिक तत्व 'अग्नि तत्व' रहा होगा।

इस तारतम्य में अब यह कहना और सोचना सार्थक होगा कि – 'अग्नितत्व' की उत्पत्ति के उपरान्त 'वायुतत्व' और 'आकाश तत्व ' की उत्पत्ति हुई होगी। उसी क्रम में 'आकाश तत्व' और 'वायु तत्व' के संयोजन और आपसी सहयोग से 'जल तत्व' की उत्पत्ति हुई होगी । 'जल तत्व' द्वारा व्यापक जलवृष्टि के उपरान्त 'पृथिवी तत्व' की उत्पत्ति को सार्वभौमिक क्रम में सत्यपरक् मानना सार्थक लगता है।

पांचों तत्वों की उत्पत्ति के क्रम में 'ब्रह्माण्ड' में असंख्य अवयवों की भी उत्पत्ति हुई होगी – इस तथ्यात्मक बात का भी प्रतिकार नहीं किया जा सकता।

हो सकता है कि 'ब्रह्माण्ड' के व्यापक शून्य के अन्तर्गत यह जो प्रकृति की उत्पत्ति हुई होगी, उसी क्रम में तमाम अनगिनत ऐसे जीव – जन्तुओं की भी उत्पत्ति हुई होगी जो धीरे – धीरे क्रमिक विकास के क्रम में 'मानव जीवन' का कोई न कोई आकार ग्रहण कर लिया हो।

उपरोक्त क्रम में 'प्रकृति की उत्पत्ति' की व्यापक सम्भावना के अन्तर्गत, उसके विविध आयामों और उससे सम्भावित उत्पत्ति को लेकर भी शोधात्मक विवेवचना कर लेना आवश्यक है। क्योंकि उसी श्रृंखला में 'जन्म, मृत्यु और जन्म' का क्रम भी अर्द्धवृत्त से पूर्णवृत्त की ओर निरंतर घूमेंगा। इस शोधात्मक और रहस्यात्मक बिन्दुओं को निम्नक्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1.जब कोई चिकित्सक किसी व्यक्ति की शल्य चिकित्सा करता है तो उसे भी अन्त तक यह आन्तरिक संशय बना रहता है कि – अमुक व्यक्ति जिसकी वह शल्य चिकित्सा कर रहा है, वह चिकित्सा के उपरान्त ठीक होगा या मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।

2. जब हम किसी व्यापक या सूक्ष्म वस्तु या रचनात्मक बिन्दु की बात करते हैं तो वह 'शल्य चिकित्सा' का स्वरूप किसी न किसी रूप में ग्रहण कर लेता है।

3. किसी भी निर्माण या संरचना को विविध आयामों के अन्तर्गत कोई नया रूप देना होता है तो उसके लिए एक संतुलित दार्शनिकता के क्रम में 'भावना'या विविध विरोधाभासों को तुष्टिकरण के साथ देखना या सोचना आवश्यक नहीं है।

4. हम इस बात का प्रतिकार नहीं करते हैं कि प्रकृति की उत्पत्ति की व्यापक प्रक्रिया के अन्तर्गत – ईश्वरीय तत्व के व्यापक समूहों की उपस्थिति अल्प या शून्य रही हो।

5. यह ऋत्संम्मत है कि – प्रकृत्ति के उत्पत्ति के अन्तर्गत अखण्ड ब्रह्माण्ड के व्यापक शून्य में किसी न किसी रूप में 'मानव का व्यापक अंश ' और 'ईश्वरीय तत्वांश का अति व्यापक समूह' के मध्य कोई न कोई सामंजस्य अवश्य विद्यमान रहा होगा।

6. प्रकृति की उत्पत्ति के अन्तर्गत यह रहस्य अभी भी बना हुआ है कि 'ईश्वरीय तत्वांश' और 'मानव का तात्विक अंश' की उत्पत्ति किस क्रम में हुई होगी।

7. एक सम्भावित सीमा तक यह सच है कि – देवांश तत्वों के अति व्यापक समूह के लिए कुछ भी करना असंभव नहीं है। एक तरह से स्रष्टि का नियामक /सूत्रधार देवांश तत्वों का व्यापक समूह ही बनता है। ऐसे में आरम्भिक मानव उत्पत्ति विविध जीव – जन्तुओं के विकास/संवर्द्धन/सहयोग से हुआ हो या पुरुष/स्त्री का आरम्भिक स्रोत देवांश तत्वों का समूह स्वयं बना हो – यह सब व्यापक प्रामाणिकता के अभाव में भी एक सीमा तक सम्भव है।

'प्रकति स्रष्टि' के पूर्व हमें 'पंचतत्व' के उद्‌भव और विकास पर भी नये सिरे से विचार कर लेना चाहिए। 'पंचतत्व' का उद्‌भव और विकास को निम्न क्रम में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा सकता है–

1. प्रकृति के उत्पत्ति के क्रम में पांचों तत्वों का क्रमिक क्रम – 'अग्नि तत्व, वायु तत्व, आकाश तत्व, जल तत्व और पृथिवी तत्व' हो सकता है। इस उत्पत्ति के क्रम में तत्वों का एक दूसरे से क्रमिक संयोजन या सामंजस्य के मध्य 'ईश्वरीय अंश' की उपस्थिति अवश्य रही होगी। क्योंकि 'ईश्वरीय अंश' की अनुपस्थिति में एक तत्व का दूसरे तत्व से संयोजन या विखंडन असम्भव सा हो जाता है।

2.. यदि ईश्वरीय अंश 'तत्व – दर – तत्व' के अन्तराल में विद्यमान न होता तो मानव या 'जीव – जन्तुओं' के उत्पत्ति की सम्भावना न के बराबर होती । क्योकि प्रकृति के स्रष्टि के सापेक्ष में ईश्वरीय अंश वह सार्थक बीज है जो नई जीवंत स्रष्टि का संवाहक या उत्प्रेरक हो सकता है । – रचनात्मक विज्ञजनों के लिए यह सब नये सिरे से विचारणीय है।

3. स्रष्टि या उत्पत्ति के सापेक्ष में तत्वों का मूल्यांकन यहां पर वैज्ञानिक अर्थों के आधार पर नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह 'तत्व' एक असीमित / अपारिभाषित 'समुच्चय' के अर्थों में प्रयुक्त हो सकते हैं।

4. तत्वो का संयोजन या सामंजस्य, एक दूसरे से क्रमिक श्रृंखला या ऊपर – नीचे के आधार पर नहीं होता है। क्योंकि यह सब ईश्वरीय अंशों के अतिप्रभाव के आधार पर होता है।

5. सच तो है कि स्रष्टि के सापेक्ष तत्वों का क्रमिक क्रम एक दूसरे में विलीन होने प्रयास करता है। वह भी ईश्वरीय अंशों के संतुलित या स्वनिर्मित आधार या

व्यापक प्राकृतिक उपक्रम के अन्तर्गत। – यह सब अभी खोज – शोध का विषय बना हुआ है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर हम किसी भी बिन्दु की उपेक्षा या नगण्यता सिद्ध करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। हां, वह कब और कहां दृष्टव्य होगा, इसकी विवेचना हम आवश्यक और निश्चित स्थल पर अवश्य करेंगे।

'तत्व' यहां पर सांकेतिक भाषा है, जो आगामिक क्रम में वैज्ञानिकता को लेकर एक भ्रम उत्पन्न कर सकता है। ऐसे में तमाम भ्रमों से बचने और स्रष्टि की असीमित व्यापकता को सूक्ष्म और विराट दृष्टि से जानने समझने के लिए 'पंचतत्व' को 'पंच महासमुच्चय' के रूप लिया जा सकता है। इसकी क्रमिक विवेचना को निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. अग्नि महासमुच्चय – पूरी स्रष्टि में जब भी हम किसी खण्ड या उपखण्ड को विभक्त करेंगे तो वहां अग्नि महा समुच्चय का पांचवां भाग किसी न किसी रूप में अवश्य मिलेगा। खण्ड – खण्ड में विभक्त समुच्चयों के विविध अवयवों को ढूंढ़ना – खोजना 'ज्ञान – विज्ञान' का विषय है। अब वह इन असंख्य अवयवों में से किन – किन अवयव को ढूंढ – खोज पाता है – यह सब भविष्य के गर्भ की बात है।

2. वायु महासमुच्चय – स्रष्टि के निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान – 1/5 भाग किसी न किसी रूप में अवश्य रहा है। यह पांचवां भाग अन्य चारों समुच्चयों में इस तरह से विलीन रहता है कि उसे किसी भी स्थिति में पूरी तरह अलग करना ईश्वरीय अंशों या उसकी व्यापकता के लिए भी पूर्णतः सम्भव नहीं है।

3. प्रकाश महासमुच्चय – स्रष्टि निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान – 1/5 रहा है। यह 'महासमुच्चय' भी प्रकृति की स्रष्टि में अन्य 'महासमुच्चयों में पूर्णतः विलीन रहते है।

4. आकाश महासमुच्चय – स्रष्टि निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान – 1/5 रहा है। यह 'महासमुच्चय' भी प्रकृति की स्रष्टि में अन्य 'महासमुच्चयों में पूर्णतः विलीन रहते है।

5. पृथिवी महासमुच्चय – स्रष्टि निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान – 1/5 रहा है। यह 'महासमुच्चय' भी प्रकृति की स्रष्टि में अन्य 'महासमुच्चयों में

पूर्णतः विलीन रहते है। प्रकृति के स्रष्टि के सापेक्ष में यह 'महासमुच्चय' किसी न किसी रूप में स्रष्टि का मूलाधार बनता है।

पृथिवी, एक ऐसा 'महासमुच्चय' है जो विविध मानव स्रष्टि, जीव – जन्तुओं की स्रष्टि के साथ – साथ विविध जीव – निर्जीव व्यापक अवयवों का नियामक और मूल स्रोत बनता है। वैसे तो स्रष्टि के व्यापक जन समूह को पांचों 'महासमुच्चय' किसी न किसी रूप में नियंत्रित करते रहते हैं।

इसके साथ – साथ 'जीव – जन्तु' और विभिन्न वनस्पतियों के निर्माण में इस महासमुच्चय का योगदान प्रथम स्तर पर रहा है। इसीलिए सम्पूर्ण प्रथम या अन्य स्रष्टि में इसे किसी न किसी रूप में भौतिकता, धार्मिकता और आध्यात्मिकता के आधार पर आरम्भिक स्रोत भी मान सकते हैं।

'मेटाफिजिकल' क्रम में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि – 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में दोनों क्रम क्रमिक रूप में घटित होता है। यही प्रकृति का शाश्वत सत्य है। हां, यह बात अवश्य है कि – किसी एक का क्रम इतना विकसित होता है कि उसके सापेक्ष में दूसरे क्रम को खोज पाना सरल नहीं है।

स्रष्टि की इस व्यापकता और अन्तहीन सा दीखने वाले अति व्यापक कैनवास में वह अन्तहीन सा अन्तराल कितना व्यापक होगा जहां इसका (स्रष्टि) क्रमिक समापन (महाप्रलय) होना आरम्भ हो जायेगा।

स्रष्टि और सामूहिक विनाश (महाप्रलय) के मध्य लगभग 12000 दैव वर्षों का अन्तराल होता है। इस लम्बे अन्तराल में 'पंचतत्व' स्रष्टि के एक – एक कण में विद्यमान ही नहीं, बल्कि विलीन से हो जाते हैं। इस अनन्तगामी सामूहिक विलीनता में इन तत्वों का अलग से कोई ऐसा अवशेष नहीं बचता है जिसे स्रष्टि विनाश के उपरान्त ढूंढ़ा – खोजा जा सके ।

हां, इतना अवश्य है कि प्रकृति के प्रथम स्रष्टि की तरह इन तत्वों के आरम्भिक स्रोत को ढूंढ़ने – खोजने की अलग से आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसलिए यह प्रामाणिक आधार पर नहीं कहा जा सकता है कि इन पंचतत्वों का अस्तित्व 'महाप्रलय' के उपरान्त एकदम से समाप्त सा हो जायेगा। लेकिन इसके साथ – साथ इस बात का भी प्रतिकार नहीं किया जा सकता है कि 'स्रष्टि –

विनाश' के क्रम में 'पंचतत्व' के अस्तित्व का स्वरूप बोधगम्य या दृष्टव्य होगा या नहीं।

प्रामाणिक आधार वहां ढूंढ़ा – खोजा जाता है जहां उसका कोई पूर्व आधार हो। यहां पर भी लगभग इसी मत को विविध परिकल्पना के आधार पर सत्यापित किया जा सकता है।

पूर्व ग्रंथों के अनुसार – मानव मास पितरों का अहोरात्र (दिन और रात्रि) है। इसी क्रम में मानव वर्ष देव अहोरात्र होता है।

कृतयुग का विस्तार दैव मान से 4000 वर्ष है। इसके पूर्व सन्ध्या – 400 वर्ष है और उसके उपरान्त मध्यान्त का काल लगभग 400 वर्ष है। इसी क्रम में त्रेता, द्वापर और कलियुग क्रमिक क्रम में – 3000, 2000 और 1000 दैव वर्ष है। इस क्रम में कृतयुग – 4800 वर्ष, त्रेता – 3600 वर्ष, द्वापर – 2400 वर्ष और कलियुग – 1200 दैव वर्ष का होगा। इन चारों युगों के सामूहिक अन्तराल का विस्तार लगभग – 12,000 दैव वर्ष होगा।

यही लगभग 12,000 दैव वर्ष का अन्तराल 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में होना चाहिए।

यह सम्भावित सच है कि प्रथम स्रष्टि के उपरान्त जो 'महाप्रलय' हुआ होगा उसमें असंख्य 'जीव – जन्तु', असंख्य वनस्पतियों के साथ – साथ असंख्य मानव आदि का असंख्य/असंख्य सूक्ष्म भी प्रथम स्रष्टि की तरह यह दूसरी स्रष्टि में शत प्रतिशत विशुद्ध नहीं रहा होगा। लेकिन इसी क्रम में इस बात का भी प्रतिकार नहीं किया जा सकता है कि यह दूसरी स्रष्टि प्रथम स्रष्टि की तरह एकदम से रिक्त – सिक्त नहीं रही होगी।

असंख्य – असंख्य जीव आत्माएं विनाश – स्रष्टि के क्रम में ब्रह्माण्ड में ईश्वरीय अवशेषों के सापेक्ष में धरोहर के रूप में विद्यमान रही होगी। 'पंचतत्व' के साथ – साथ उन सबका नई स्रष्टि के निर्माण में किसी न किसी रूप में सहयोग अवश्य रहा होगा।

इस नई स्रष्टि के सृजनात्मक क्रम में असंख्य – असंख्य जीव आत्माओं की वायावी गतिशीलता से रचनात्मकता के साथ – साथ विध्वंसात्मक गतिशीलता से कहीं न कहीं स्रष्टि के पुनः विनाश के भी सोते को फूटने की

न्यूनात्मक शुरूआत हो गयी होगी। क्योंकि स्रष्टि के सापेक्ष में 'अन्त ही आरम्भ' है।

रचना और विध्वंस का क्रम स्रष्टि में नदी के दो पाट की तरह निरंतर गतिशील रहता है। अब यह बात दूसरी है कि दोनों के मध्य का अन्तराल कब और किन परिस्थियों में कितना घटता – बढ़ता है। – यह सब नये सिरे से विचारणीय है।

'स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत' – आदि सात मनुओं का स्रष्टि आरम्भ और निर्माण में विशेष योगदान रहा है। 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में यह वैवस्वत मनु के 14वीं स्रष्टि का कलियुग है।

'स्रष्टि – विनाश' के मध्य के अन्तराल का मध्य नियामक बिन्दु कभी – कभी इस बात का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है कि – उस बिन्दु के पूर्व और उत्तर में धार्मिक और आध्यात्मिक गतिविधियों की व्यवस्था कैसी और किस प्रकार की रही है। धार्मिकता के अन्तर्गत, यदि कर्मकाण्डीय व्यवस्था स्वस्थ्य और रचनात्मक रहती है तो मानव जीवन के 'सूक्ष्म – स्थूल' के संयोजन और विखंडन का क्रम 'जन्म – मृत्यु और जन्म' पुनर्जन्म से निरंतर जुड़ता रहता है। यदि इस क्रमिक तारतम्य में जीवात्मा का आवागमन निर्द्वन्द्व और सामान्य रहता है तो चारो महायुगों का प्रस्तावित समय या अन्तराल विशेष प्रभावित नहीं होता है।

यह भी यथार्थतः सच है कि जिस काल – परिवेश में ऋषि – मुनियों के धर्मसूत्रों और गृहसूत्रों का पूर्णतः पालन जनमानस द्वारा राजधर्म के अन्तर्गत किया गया है वहां भी चारों युगों के उपरान्त विनाश हुआ है लेकिन उसके उपरान्त स्रष्टि का स्वरूप पहले से स्वस्थ्य और सशक्त परंपराओं के अन्तर्गत हुआ है।

अन्ततः हम इस बात को भी स्पष्ट कर देते है कि धार्मिकता और आध्यात्मिकता के स्वस्थ्य – सशक्त और तथाकथित विकसित परिवेश में ईश्वरीय अवशेषों, अंशों और उनसे जुड़ी आध्यात्मिक ऊर्जा का यथोचित विकास भी हुआ है। यदि ऐसा न होता तो हम आप असंख्य – असंख्य मानव, जीव – जन्तुओं और असंख्य वनस्पतियों के साथ चौदहवीं स्रष्टि के कलियुग तक न पहुच पाते।

इतना तो ऋत् साक्ष्यों के आधार पर सच है कि – आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ – साथ विविध ऊर्जा का स्रोतात्मक स्रोत या सोता कभी विनष्ट नहीं होता है। वह सबका सब 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में अपना रूप / स्वरूप बदलते हुए स्रष्टि/ विनाश के विविध रूप / अनन्तगामी आयामों में निरंतर विद्यमान रहता है।

हां, इतना अवश्य है कि विविध ऊर्जाओं में कालखण्ड के परिवर्तन के क्रम में कभी – कभी आपेक्षित परिवर्तन स्वतः हो जाता है। ऐसे में हम प्रकृति के तथाकथित आपेक्षित परिवर्तन को नकार भी तो नहीं सकते।

लेकिन उपरोक्त क्रम में प्रकृति के सापेक्ष में जो भी परिवर्तन होता है उसमें किसी भी तरह से धर्मिक / आध्यात्मिक ऊर्जा या उससे जुड़े विविध ऊर्जा का ह्रास नहीं होता है। हां, उनके परिवर्तनशील अन्तराल में थोड़ा – बहुत परिवर्तन प्रकृति के सापेक्ष में हो जाये – यह अलग बात है। – यह सब भी विविध आध्यात्मिक विज्ञजनो के लिए शोधात्मक दृष्टि से अतिविचारणीय है।

आरम्भिक काल से ही यह होता रहा है कि – हम अपनी खुली आंखों जितनी दूर तक देखने में सक्षम होते है, कानों से तीव्र ध्वनियों को एक सीमा तक सुनने में सक्षम होते हैं, नाक से दुर्गन्ध / सुगंन्ध को एक सीमा तक ग्रहण कर सकते हैं या हाथ – पैर या शरीर के अन्य अंगों का उपयोग / प्रयोग एक सीमा तक कर सकते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि उसके आगे पीछे और कुछ नहीं है। सच तो यह है कि हमारे भूत और भविष्य में किसी न किसी अदृश्य क्रम में कोई न कोई जीवन सूक्ष्म रूप में लुका – छिपा है। उन सब अदृश्य से लगने वाले क्रमों की चर्चा 'मृतात्माओं की खोज' में विस्तार से की गयी है।

यह असंख्य मृतात्माएं धार्मिक / आध्यात्मिक ऊर्जाओं से जुड़ते – टूटते हुए कब मानव जीवन में प्रवेश करती है और कब मानव जीवन से 'सूक्ष्म – स्थूल' के विखंडन के क्रम में अलग – थलग होकर मृतात्मा का अदृश्य स्वरूप / आकार धारण कर पुनर्जन्म की ओर विविध योनियों में भ्रमण करते पुनः मानव या जीव – जन्तु के जीवन में प्रवेश करके सजीव हो उठती हैं।

उपरोक्त बातों को विविध कथ्य – तथ्य के अन्तर्गत कहने का अर्थ यह है कि प्रकृति के विविध अवयवों के साथ – साथ 'मृतात्माओं के विविध आयाम' का क्रम भी जुड़ा हुआ है।

हां, इतना अवश्य है कि 'महाप्रलय' और नई स्रटि के मध्य इन सबकी गतिशीलता एक काल सीमा तक शून्य सी हो जाती है । इन सबका अर्थ कदापि यह नहीं निकालना चाहिए कि उन सबका अस्तित्व संदिग्ध हो सकता है।

सच तो यह है कि 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में हम सबका जीवन असंख्य – असंख्य जीवात्माओं या मृतात्माओं के साथ – साथ उन तथाकथित प्रकृति के विविध असंख्य – असंख्य अवयवों से जुड़ता – टूटता है जो तथाकथित 'महाप्रलय' के उपरान्त नई स्रष्टि की ओर उन्मुख हैं । यही नहीं, बल्कि यह भी शाश्वत सत्य है कि 'स्रष्टि – दर – स्रष्टि' और 'विनाश – दर – विनाश' के मध्य पूरा का पूरा ब्रह्माण्ड तथाकथित प्रकृति के सापेक्ष कहीं भी किसी से अलग – थलग नहीं होता है। यदि यह सब ऐसा न होता तो यह तथाकथित 'प्रकृति की उत्पत्ति' भी किसी न किसी रूप में प्रभावित होती रहती। यथार्थतः ऐसा सम्भव नहीं है।

'स्रष्टि – विनाश और स्रष्टि' के सापेक्ष में 'पंचतत्व' /'पंचमहासमुच्चय' को लेकर उपरोक्त क्रम में जो शोधात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है उसमें कहीं भी यह परिलक्षित नहीं होता है कि 'पंचतत्व' भी 'स्रष्टि और विनाश' के विविध क्रमों से किसी न किसी रूप में प्रभावित होते हैं। हां, इतना अवश्य है कि इनका उद्भव/आरम्भ 'प्रथम स्रष्टि' में क्रमिक क्रम (अग्नि'तेज', वायु, आकाश, जल और पृथिवी) अवश्य हुआ है लेकिन 'प्रथम स्रष्टि' के उपरान्त उनका सम्भावित क्रम (पृथिवी, जल, तेज 'अग्नि', वायु और आकाश) का मूल स्वरूप कभी भी परिवर्तित नहीं हुआ है। यहां तक कि 'स्रष्टि और विनाश' के क्रमिक क्रम में भी 'पंचतत्व' का मूल स्वरूप प्रभावित या परिवर्तित नहीं हुआ है।

'मेटाफिजिकल' क्रम में विविध 'भौतिक/ आध्यात्मिक' ऊर्जाओं की तरह 'पंचतत्व' का मूलस्रोत कभी भी नष्ट नहीं होता है। यहां तक कि प्रकृति के 'स्रष्टि, विनाश और स्रष्टि' के क्रमिक क्रम में इनका (पंचतत्व) मूल स्वरूप' दृश्य/अदृश्य' रूप में 'देवांश के अन्तहीन व्यापक समूह' और 'असंख्य/असंख्य मृतात्माओं ' के 'दृश्य/ अदृश्य' व्यापक समूहों के साथ 'अखण्ड ब्रह्माण्ड' में निरंतर किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। इन सबके लिए यह कहना

रंचमात्र भी तर्कसंगत नहीं है कि – ' हम अपनी खुली आंखों से जितनी दूर तक देख लें, खुले कानों से जितने तीव्रगति से सुन ले या अपने विविध अंगों (हाथ और पैर आदि) का अधिक से अधिक जितना उपयोग/प्रयोग कर लें – वहीं सही है'।

'पंचतत्व' (पृथिवी, जल, तेज 'अग्नि', वायु और आकाश आदि) के अन्तहीन व्यापकता और अन्तहीन अस्तित्व को लेकर शाब्दिक संदर्भों में जितनी भी व्याख्या या तर्कादि प्रस्तुत किया जाय वह सबका सब 'अखण्ड ब्रह्माण्ड' के सापेक्ष में आधा अधूरा ही सिद्व हो पायेगा। क्योंकि इन्हें शब्दों में बांधना या लिपिबद्ध करना 'देवांश के अतिव्यापक / अन्तहीन' समूहों की तरह असम्भव सा है। लगभग यही स्थिति 'मृतातमाओं के असंख्य/असंख्य' समूहों की भी है।

लेकिन स्रष्टि की वर्तमान (चौदहवीं स्रष्टि का कलियुग) व्यवस्था/अव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इन सबके अन्तहीन अस्तित्व को यथासम्भव लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा सकता है। क्योंकि यह वर्तमान व्यवस्था 'सतयुग, त्रेता और द्वापर आदि' की तरह नहीं है जिसमें इनकी सूक्ष्मता या विराटता को 'अन्तः बाह्य' में अतिविज्ञ जन जान /समक्ष सकें।

'पंचतत्व' के अन्तहीन अस्तित्व और अन्तहीन व्यापकता को लेकर निम्न सम्भावनाओं को प्रस्तुत करने का दुस्साहस निम्न क्रम में किया जा सकता है–

1.'पंचतत्व' का समानुपातिक क्रम ऐसा होता है जिसमें पांचों के पांचों 'तत्व' निरंतर समाहित रहते हैं।

2.प्रथम स्रष्टि के उपरान्त .'पंचतत्व' के समानुपातिक क्रम को 'स्रष्टि और विनाश' का क्रम भी कभी प्रभावित नहीं कर पाया है।

3. प्राकृतिक स्रष्टि में 'पंचतत्व' का अस्तित्व निरंतर बना रहता है।

4. .'पंचतत्व' के समानुपातिक क्रम में जब 'अग्नि' तत्व और 'जल' तत्व के मध्य बराबर का समानुपातिक क्रम बन जाता है तो 'अग्नि' तत्व का आहार 'जल' तत्व बन जाता है और 'जल' तत्व का आहार 'अग्नि' तत्व बन जाता है। यह प्रतिक्रिया मानव और जीव – जन्तुओं की योनियों में सामान्य क्रम में कभी – कभी देखने को मिलती है।

5. अन्तहीन प्रकृति में, जब स्रष्टि अपने अन्तिम चरण यानि विनाश के निकट पहुंचने लगती है तो उस समय पंचतत्वों का समानुपातिक क्रम आपस में शिथिल पड़ने लगता है। वहीं जब नये स्रष्टि का आरम्भ होने का समय आता है तो पंचतत्वों के मध्य का समानुपातिक क्रम आपस में प्रगाढ़ होने लगता है।

6. 'पंचतत्व' का समानुपातिक क्रम जब साम्यावस्था में रहता है तो 'देवांश' तत्वों का अन्तहीन अतिव्यापक समूह और विविध 'जीवांश' (मानव सूक्ष्म और जीव – जन्तुओं का सूक्ष्म) का अन्तहीन सा अतिव्यापक समूह उससे ऐसा तारतम्य और समन्वय निर्मित करता है जो स्रष्टि की व्यापकता और पराकाष्ठा को नियति क्रम में दर्शाने लगता है।

7. अन्ततः निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि – 'प्रथम स्रष्टि' के आरम्भ के उपरान्त 'पंचतत्व' का समानुपातिक क्रम 'स्रष्टि–विनाश और स्रष्टि' के क्रमिक क्रम में कभी भी विनष्ट नहीं हुआ है। 'स्रष्टि – विनाश और स्रष्टि' के आगामिक क्रम में भी 'पंचतत्व' का समानुपातिक क्रम कभी विनष्ट नहीं होगा।

उपरोक्त सप्त बिन्दु को 'ऋतसाक्ष्य' के आधार पर 'काल/महाकाल' से किसी न किसी रूप में जोड़ा जा सकता है। क्योंकि उसके सापेक्ष में 'पंचतत्व' का समानुपातिक क्रम भी अजर और अमर है। आगे की श्रृंखला में हम ' जीवोत्पत्ति का मूल स्रोत' – विषय पर चर्चा करेंगे। क्योकि 'मृत्यु के बाद का जीवन' का सही शोधात्मक विवरण ' जीवोत्पत्ति का मूल स्रोत' के बिना सही क्रम में प्रस्तुत करना ज्यादा सार्थक नहीं हो सकता है।

– क्रमशः